मुस्लिम समाज में जागरण

उन्नीसवीं शताब्दी में न केवल हिंदू समाज में जागरण लाने के लिए सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए अपितु मुस्लिम समाज में भी सुधार के लिए आंदोलनों का सूत्रपात किया गया। यह शताब्दी हिंदू समाज के लिए उत्साहवर्द्धक थी, किंतु मुस्लिम समाज के लिए अधिक उत्साहवर्द्धक सिद्ध न हो सकी। जहाँ हिंदुओं के समाज में सुधार लाने के लिए ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी तथा अन्य सनातनी संस्थाओं ने भिन्न-भिन्न आंदोलन प्रारंभ किए वहाँ मुस्लिम समाज में सुधार लाने के निमित्त महज तीन ही आंदोलन—वहाबी आंदोलन, अलीगढ़ आंदोलन और अहमदिया आंदोलन—प्रारंभ हुए और इनमें भी केवल अकेला अलीगढ़ आंदोलन ही चर्चित रहा और लोकप्रिय हुआ। अपने उद्देश्यों में भी मुस्लिम आंदोलन सीमित थे। अतः, हिंदुओं के जीवन के समग्र पहलुओं को प्रभावित करने में जहाँ सुधार आंदोलनों को सफलता मिली, वहाँ मुस्लिम जीवन के सारे पक्ष को मुस्लिम आंदोलन प्रभावित नहीं कर सके।

इस शताब्दी में मुसलमान निराशाजनक स्थिति में थे। औरंगजेब के कमजोर उत्तराधिकारियों के काल में मुगल-साम्राज्य की केंद्रीय शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी और मुस्लिम समाज की प्रभा धूमिल होने लगी थी। देश में अब न तो राजनीतिक एकता थी और न पतनोन्मुख साम्राज्य को सँभालने के लिए बादशाहों के पास शक्ति थी। इन्हीं दिनों राजपूत तथा मराठे अपनी शक्ति में वृद्धि करके मुगलों की शक्ति को चुनौती देने लगे। किंतु, भारत की ये तमाम शक्तियाँ क्षणिक सिद्ध हुईं।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारत में यूरोप की जातियों का आगमन होने लगा। ये जातियाँ मुख्यतः व्यापार करने के उद्देश्य से भारतवर्ष आई थीं। इसी सदी के उत्तरार्द्ध में इन विदेशी लोगों और व्यापारियों ने केंद्रीय सत्ता की कमजोरी से लाभ उठाकर भारत में अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए प्रयास करना प्रारंभ किया और उनमें प्रतिद्वंद्विता प्रारंभ हो गई। इस प्रतिद्वंद्विता में डच तथा पुर्तगीज पीछे छूट गए तथा अँगरेज व्यापारी आगे निकल गए। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1757 और 1764 में भारत की प्रसिद्ध शक्तियों को हटाकर अपनी सत्ता कायम कर ली और अँगरेज भारत के शासक हो गए। भारत के मुसलमानों की बची-खुची आशा भी समाप्त हो गई। उन्होंने अब यह मान लिया कि भारत में उनका शासन कायम होनेवाला नहीं है। 1857 में बहादुरशाह जफर के गद्दी से हटा दिए जाने के बाद उनका राजनीतिक गौरव भी समाप्त हो गया। मुसलमानों की राजनीतिक तथा सामाजिक प्रतिष्ठा, धर्म, आर्थिक संपन्नता आदि सब कुछ खतरे में पड़ गए। कंपनी सरकार ने उनकी संपत्ति को जब्त करके, उन्हें राजनीतिक पदों से हटाकर और बहुत हद तक उनका दमन कर उनके मनोबल को तोड़ डाला। मुसलमान समाज में सर्वत्र निराशा व्याप्त गई थी। मुस्लिम समाज के इसी संक्रमण

की स्थिति में उसमें सुधार लाने के लिए मुसलमान नेताओं ने आंदोलन प्रारंभ किया।

वहाबी आंदोलन

वहाबी आंदोलन की जन्मभूमि अरब देश रहा है। सोलहवीं शताब्दी में इस्लाम रूढ़ियों तथा वाह्याडंबरों का शिकार हो रहा था और धर्म की मूल बातें गौण होती जा रही थीं। ऐसी स्थिति में इस्लाम में परिष्कार तथा संशोधन लाने के लिए अरब में जो आंदोलन प्रारंभ हुआ वह 'वहाबी आंदोलन' कहा जाता है।

वहाबी आंदोलन अठारहवीं शताब्दी में अरब के नज्द प्रदेश में मुहम्मद इब्वन अब्दुल वहाब के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। अब्दुल वहाब का जन्म 1700 ई० के आसपास नज्द में ही हुआ था। प्रकृत्यानुसार धर्म से जुड़े रहने के कारण अब्दुल वहाब ने अरब के धार्मिक स्थलों मक्का-मदीना की यात्रा की और धर्म-ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। स्वाध्याय के फलस्वरूप उनको यह समझने में देर न लगी कि इस्लाम का मौलिक रूप कुरूप हो रहा है। इस्लाम की मौलिकता की रक्षा के लिए उन्होंने जो आंदोलन चलाया वह उन्हीं के नाम पर 'वहाबी आंदोलन' कहलाया।

इस आंदोलन के मुख्य उद्देश्य थे इस्लाम की शुद्धता को वापस लाना और इसमें प्रविष्ट कुरीतियों तथा अंधविश्वासों को दूर करना। इसके लिए अब्दुल वहाब ने भ्रमण करके धर्म-संबंधी बातों का प्रचार करने का कार्यक्रम बनाया। उन्होंने मिन्नत प्रथा की कड़ी निंदा की। फकीरों तथा पीरों की कब्रों पर चढ़ाई गई मिन्नत का उन्होंने विरोध किया। उन्होंने सूफी तथा कसब्बुफ जैसे संप्रदायों की भी निंदा की जो इल्लाम के मूल सिद्धांत की अवहेलना कर रहे थे। उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित इस्लाम को ही पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उन्होंने मुस्लिम समाज की कई बुराइयों और रीति-रिवाजों की भी तीखी आलोचना की। विलासिता एवं वैभव को उन्होंने त्याज्य बतलाया, सूदखोरी का विरोध किया और चार खलीफाओं के जीवनादर्शों को अपनाने के लिए आग्रह किया।

भारत के मुसलमानों पर वहाबी आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा। 1804 ई० में बंगाल के बहादुरपुर के हाजी शरियत उल्लाह ने किसान आंदोलन प्रारंभ किया। इनके अनुयायी 'फरायजी' कहलाते थे। इनके अनुयायियों ने इस्लाम पर हिंदुओं (काफिरों) के पड़े प्रभाव को दूर करने के लिए कहा। फरायजी समस्त मुसलमान समाज को प्रभावित नहीं कर सके क्योंकि वे अधिकतर सांप्रदायिक बातों का प्रचार करते थे जिन्हें अधिकांश मुसलमान पसंद नहीं करते थे।

हाजी के निधनोपरांत उनके पुत्र दुधू मियाँ ने उनके सिद्धांतों और विचारों को फैलाने का काम किया। भारत में वहाबी आंदोलन के प्रमुख नेता थे सैयद अहमद बरेलवी। उन्होंने 1822 ई० में हज के लिए मक्का की यात्रा की। इस यात्रा के दौरान ही वे वहाबियों के संपर्क में आए। वहाबी विचारों से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि भारत वापस होते ही उन्होंने यहाँ वहाबी विचारों का प्रचार करना प्रारंभ किया। भारत में वहाबी आंदोलन के जनक वे ही थे। उन्होंने समस्त देश की यात्रा की और घूम-घूमकर मुसलमानों को यह बतलाना

प्रारंभ किया कि विलासिता इस्लाम का अंग नहीं है, अतः मुसलमानों को विलासी नहीं होना चाहिए। उन्होंने यह भी बतलाया कि यूरोप के देश इस्लाम से ईर्ष्या करते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक वहाबी आंदोलन मंद पड़ गया और इसके प्रचारक कम हो गए। इस आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि देववंद में 1886 ई० में स्थापित 'दारूल-उल्म' नामक संस्था है। इस संस्था ने वहाबी आंदोलन को बाद के कुछ वर्षों तक जीवित रखा।

अलीगढ़ आंदोलन

भारत की ब्रिटिश सरकार तथा अँगरेजी शिक्षा का सहयोग पाकर मुस्लिम समाज में सुधार और जागरण लाने के लिए जो सबसे बड़ा आंदोलन प्रारंभ हुआ वह 'अलीगढ़ आंदोलन' कहलाता है। इस आंदोलन के जनक सर सैयद अहमद खाँ थे जिनको आधुनिक भारत में 'मुसलमानों का राजनीतिक पथ-प्रदर्शक' कहा जाता है।[1]

सर सैयद अहमद खाँ का जन्म 17 अक्टूबर, 1817 को दिल्ली के एक सैयद परिवार में हुआ था। इनका खानदान धार्मिक विचारों से प्रभावित था। पिता मीर मुत्तकी की तरफ से इनका परिवार मुगल सम्राट् औरंगजेब के दिनों से मुगल साम्राज्य की सेवा में था और इस कारण सैयद अहमद खाँ का मुगल दरबार से निकट का संपर्क था। पिता नक्शबंदी संप्रदाय से जुड़े हुए थे जिसके बड़े प्रतिनिधि मीर गुलाम अली दिल्ली में थे। सैयद अहमद मीर की काफी इज्जत करते थे। सैयद अहमद के नाना ख्वाजा फरीदुद्दीन अहमद इरानी सौदागरों के एक संपन्न परिवार के रत्न थे। लखनऊ में उन्होंने गणित तथा ज्योतिष की शिक्षा पाई थी और जीवन में इरान तथा बर्मा के दरबार में ब्रिटिश राजदूत रहे। बादशाह अकबरशाह द्वितीय का वजीर बनने का उन्हें दो बार सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

सर सैयद अहमद खाँ ने प्राचीन शिक्षा के आधार पर प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। अठारह उन्नीस वर्ष की आयु तक उन्होंने कुरानशरीफ, अरबी तथा फारसी का अध्ययन कर डाला और गणित का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान अर्जित किया। किंतु, उनकी शिक्षा नियमित ढंग से नहीं हुई थी। यही कारण था कि उनके इस्लामी विषयों का ज्ञान अधूरा था। सब कुछ होते हुए भी उनकी विद्यानुरागिता जीवनभर जीवित रही। 1857 के बाद उन्होंने पश्चिमी विचारों का अध्ययन किया और अँगरेजी का भी कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त किया। पश्चिमी विचारों के अध्ययन और इंगलैंड की यात्रा ने सैयद अहमद खाँ को अँगरेजों तथा उनकी तहजीब एवं रहन-सहन का भक्त बना दिया। पश्चिम के उन्नतशील भौतिक विज्ञान से वह अत्यधिक प्रभावित थे।

जब सैयद अहमद खाँ इक्कीस वर्ष के थे तब उनके पिता का देहावसान हो गया। परिवार का सारा भार उनके कंधों पर आ पड़ा। परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण के लिए उन्होंने अपने चाचा के साथ रहकर अदालती काम सीखना प्रारंभ

---

1. एम० एस० जैन, आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक, पृ० 13

किया। दिल्ली में यह काम सीखते समय उनके जीवन में एक नया मोड़ आया। यहाँ उनका परिचय हैमिल्टन नामक एक अँगरेज जज से हुआ जिसने उन्हें (सैयद अहमद को) आगरा बुलाकर 1839 ई० में कमिश्नरी के दफ्तर में नायब मुंशी के पद पर नियुक्त कर दिया। सैयद अहमद ने 1841 में मुंसिफी की परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की और मुंसिफ बनकर मैनपुरी आ गए। 1846 ई० में उनका स्थानांतरण दिल्ली हो गया। आगरा और दिल्ली में सरकारी सेवा करते समय उन्होंने पुस्तकें भी लिखीं। तत्पश्चात् 1855 ई० में सदर अमीन बनकर वे बिजनौर आ गए। सिपाही विद्रोह के समय वे बिजनौर में ही थे। यहाँ की सेवा-अवधि में भी उन्होंने एक ऐतिहासिक ग्रंथ का प्रणयन कर डाला।

1864 ई० में सैयद अहमद ने गाजीपुर में एक 'साइन्टिफिक सोसाइटी' की स्थापना की जिसका कार्यालय अलीगढ़ स्थानांतरित कर दिया गया। 1869 में उन्होंने इंगलैंड की यात्रा की। वहाँ लगभग डेढ़ वर्ष रहकर उन्होंने अँगरेजों के विचारों एवं सभ्यता का अध्ययन किया। उनकी सभ्यता, परिधान, फर्नीचर और उनके रहने के तौर-तरीकों से वे काफी अनुप्राणित हुए। भारत वापस आकर उन्होंने मुसलमानों को, विशेषकर अलीगढ़ के छात्रों को, पश्चिमी आदर्श को ग्रहण करने के लिए परामर्श किया। भारत वापस आकर सैयद अहमद ने अलीगढ़ आंदोलन प्रारंभ किया। 1875 ई० में उन्होंने अलीगढ़ स्कूल की स्थापना की जो बाद में कॉलेज के रूप में परिणत हुआ। 1876 में वे सरकारी सेवा से मुक्त हुए और स्थायी रूप से अलीगढ़ में रहने लगे। उनको 1878 ई० में इंडियन लेजिस्लेटिव कौंसिल का सदस्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब वे नेता बनकर सुधार और जागरण का काम करने लगे थे। उन्होंने 1886 में मोहम्मडन एडूकेशनल कान्फ्रेंस, 1888 में इंडियन पैट्रियोटिक एसोसिएशन और 1893 में मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल डिफेंस एसोसिएशन की स्थापना की। उनका 81 वर्ष की उम्र में 1898 में स्वर्गवास हो गया।

सर सैयद अहमद के चिंतन-विषय—1857 ई० के बाद सैयद अहमद खाँ ने निरंतर मुसलमान समुदाय की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उन्नति के लिए चिंतन करना तथा अपने चिंतन के विषय को क्रिया के रूप में परिणत करने का काम करना प्रारंभ किया। चूंकि वह कुलीन खानदान के थे, अतः कुलीन वर्ग के ऊपर ही उनके चिंतन और कार्यों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। मुसीबत से घिरे मुसलमानों की ओर उनका ध्यान नहीं गया। ताराचंद लिखते हैं कि "निचले वर्गों पर धीरे-धीरे छा जानेवाली गरीबी पर किसी का ध्यान नहीं गया था और उनका भी ध्यान नहीं गया। चारों तरफ फैली मुसीबत के संबंध में उन्होंने बहुत कम जागरूकता दिखलाई, इसलिए उनके सारे प्रयास उस वर्ग के उत्थान के लिए थे जो पहले प्रभावशाली और शक्तिशाली रहा और जिसके शानदार कारनामों से इतिहास के पन्ने भरे हुए थे और मुस्लिम समाज को जिसपर बहुत गर्व था।"[1]

सैयद अहमद खाँ के चिंतन का यह एक बहुत ही प्रमुख विषय था कि अँगरेजों के शासन के अधीन रहकर ही मुसलमानों की स्थिति को उन्नतशील करने का प्रयास करना

---

1. ताराचंद, भाग 2, पृ० 312

चाहिए। इसका अर्थ यह था कि सैयद अहमद और उनके समर्थक भारत में अँगरेजी सत्ता के बने रहने के पक्ष में थे। उनका विश्वास था कि इस विदेशी सत्ता की छत्रछाया में ही उनकी बिरादरी की स्थिति समुन्नत हो सकती है। इसीलिए सैयद अहमद का कहना था कि मुसलमानों और अँगरेजों के मध्य जो भी आपसी संदेह और द्वेष की भावना है उसे दूर करना चाहिए। वे चाहते थे कि अँगरेजों को इस बात का विश्वास दिलाया जाए कि मुसलमान उनके शासन के सहयोगी हैं, शत्रु नहीं। उन्होंने लाहौर में 1873 ई० में भाषण देते हुए यह कहा था कि "मुसलमानों का अँगरेजों से शत्रुता रखना वैसा ही होगा जैसा नदी में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना। इसलिए, उनके लिए यह आवश्यक है कि वे उनसे मैत्री रखें।"[1] प्रतिदान में वे केवल चाहते थे कि अँगरेज सरकार मुसलमानों के हितों की रक्षा करे और उनके धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे।

इसी उद्देश्य से सर सैयद अहमद ने इस्लाम की नई व्याख्या भी की। ताराचंद ने लिखा है कि तीन कारणों के चलते उन्होंने इस्लाम की एक क्रांतिकारी व्याख्या प्रस्तुत की। पहला, विदेशी ईसाई मिशनरियाँ इस्लाम के नियमों और रीति-रिवाजों से घृणा तो करती ही थी, इस्लाम से भी घृणा करती थी। लेखन कार्य के द्वारा मिशनरियों ने इस्लाम की तीखी भर्त्सना की और शिक्षण संस्थाओं पर इस आलोचना एवं भर्त्सना का प्रभावशाली असर पड़ रहा था। मिशनरी की बिरादरी के लोग ही प्रशासक थे और ईसाई धर्म-प्रचारकों की पहुँच बड़े-बड़े पदाधिकारियों तक थी। अतः, इस्लाम की रक्षा के लिए इसे नए रूप में ढालना था ताकि विरोधी आलोचनाओं का तगड़ा जवाब दिया जा सके। दूसरा, भारत का मुस्लिम समाज राजनीतिक दृष्टि से उदासीन तथा गौरवहीन, सामजिक दृष्टि से अमर्यादित और निराश तथा आर्थिक दृष्टि से दरिद्र हो चुका था। अतः, ऐसे गिरे समाज पर आक्रमण करने के लिए किसी को भी तत्काल मसाला मिल सकता था। इस्लाम की नई व्याख्या करके मुसलमानों में आत्मसम्मान की भावना जगाना अत्यावश्यक था। इससे भी बड़ी बात यह थी कि धर्म पर जो कुसंस्कार और कुफ्र की परतें चढ़ गई थीं उनको दूर करना था। तीसरा, "पाश्चात्य विचारों और शिक्षा के विस्तार से इस्लामी आस्था के जड़मूल से नष्ट होने का खतरा दिखाई दे रहा था। आधुनिक विज्ञान की चुनौती से लोहा लेना था। अपने इन विचारों को क्रियात्मक रूप देकर सफल बनाना सैयद अहमद के लिए संभव नहीं था क्योंकि इसे सफल बनाने के लिए जिस प्रकार की शास्त्रीय विद्वता की जरूरत थी सर सैयद अहमद खाँ में वह नहीं थी।"

सैयद अहमद मुस्लिम समाज में सुधार लाना भी चाहते थे। इन दिनों यह समाज अनेकानेक बुराइयों का शिकार था। इन बुराइयों को दूर करना वे चाहते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने पुरानी शिक्षा की जगह मुसलमानों के लिए नई शिक्षा की दलील दी और सच पूछा जाए तो अलीगढ़ आंदोलन का एक मुख्य अंग शिक्षा ही थी।

---

1. मुंशी सिराजुद्दीन (सं), मजमुए लेक्चर्स सर सैयद, पृ० 104/एम० एस० जैन, पृ० 20-21

अलीगढ़ आंदोलन—यद्यपि सैयद अहमद खाँ में शास्त्रीय विद्वता का अभाव था, तथापि उनमें प्रबल साहस और अटूट जोश था। उन्होंने अपने विचारों का प्रचार किया और मुसलमानों ने उन विचारों का स्वागत किया। मुस्लिम समाज में सुधार और जागरण लाने के लिए उन्होंने अलीगढ़ आंदोलन के तीन मुख्य मुद्दे बनाए—इस्लाम की नई व्याख्या, समाज-सुधार और पुरानी शिक्षा की जगह नई अर्थात् पश्चिमी शिक्षा का अनुग्रहण।

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि परंपरागत इस्लाम कई कुरीतियों तथा अंधविश्वासों का शिकार हो रहा था जिसपर विदेशी भी कीचड़ उछाल रहे थे। ऐसा इस्लाम मुसलमानों के समाज की प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहा था। अतः, इस समाज को नई दिशा देने के लिए सैयद अहमद ने इस्लाम की नई व्याख्या प्रस्तुत की। वे जानते थे कि "ईसाई मिशनरियों और आलोचक लेखकों से लोहा लेने का उपाय यह था कि उनके विरुद्ध उन्हीं के अस्त्रों का सहारा लिया जाए। यदि वे ज्ञान और विज्ञान के नाम पर उन्हीं पर हमला बोल रहे थे, तो उन्हें भी उसी भाषा में उसका जवाब देना चाहिए।"

सर सैयद अहमद की इस्लाम की क्रांतिकारी व्याख्या उलेमा से भिन्न थी। उन्होंने अपनी व्याख्या में इस तथ्य पर बल दिया कि "कुरान की शिक्षा युक्ति और प्रकृति के बिल्कुल अनुरूप है।" धर्म की व्याख्या करते हुए उन्होंने कुरान की शिक्षा को ईश्वरीय और चिरंतन बतलाया। उन्होंने यह कहा कि हदीस में पैगंबर मुहम्मद की उक्तियाँ हैं। उनका यह भी कहना था कि सांसारिक मामले में हदीस का हुक्म नहीं भी माना जा सकता है, किंतु धर्म के मामले में हदीस के अनुसार आचरण करना अनिवार्य है। उन्होंने मानव मन की इच्छाशक्ति को स्वतंत्र बतलाया तथा आत्मा, भाग्य, देववाणी, देवदूत, शैतान आदि के संबंध में युक्तिपूर्ण बातें की। उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में विश्वास प्रकट किया और कहा कि ईश्वर है क्योंकि यह सृष्टि है। वह कुरान को ईश्वरवाणी मानकर "उसे अर्थ और शब्द दोनों दृष्टियों से अमर मानते थे।" वे काफिर को स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि व्यक्ति प्रकृति और ईश्वराज्ञा के अधीन है और इस्लाम अथवा कुरान में विश्वास नहीं करके भी वह प्रकृति तथा ईश्वर को ठुकरा नहीं सकता है।

सैयद अहमद खाँ ने कुरान और हदीस से कुछ आयतों को निकालकर उनका अपने ढंग से विश्लेषण करते हुए यह बतलाने का प्रयास किया कि "अँगरेजों के अधीन भारत दारूल इस्लाम और दारूल हर्ब दोनों था। (दारूल इस्लामवाले देश में राजसत्ता मुसलमानों के हाथ में और दारूल हर्बवाले देश में यह गैर-मुसलमानों के हाथ में होती है।) इस्लामी चिंतनधारा में इन दोनों शब्दों का विशेष स्थान है। दारूल इस्लाम में मुसलमानों को जिहाद करने का अधिकार नहीं था। सैयद अहमद ने बड़ी बुद्धिमानी तथा चतुराई के साथ कुरान तथा हदीस के आयतों का यह अर्थ प्रस्तुत किया था। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को आधार बनाकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि मुसलमान और ईसाई सदा से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किए हुए थे। उनके कहने का विशेष अर्थ यह था कि जब तक ब्रिटिश सरकार से भारत के मुसलमानों को संरक्षण एवं सहयोग मिलता रहेगा तब तक मुसलमान उनके शासन के विरुद्ध जिहाद नहीं कर सकते हैं। इतना ही नहीं, सैयद अहमद ने

मुसलमानों को ईसाइयों के धर्म-ग्रंथ बाइबिल की ओर मुख़ातिब करने का प्रयास किया। उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म में समानता बतलाई और इस संबंध में 'तबैय्यनउल कलाम' नामक एक पुस्तक की रचना भी कर डाली। उन्होंने इन दोनों धर्मों के अनुयायियों के बीच सामाजिक संबंध भी कायम करने का प्रयास किया। उन्होंने मुसलमानों को ईसाइयों के साथ बैठकर भोजन करने का भी परामर्श दिया। इसके लिए उन्होंने 'ताआम-अहल-ए-किताब' नामक एक अन्य पुस्तक की रचना की। संक्षेप में उन्होंने कुरान शरीफ में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। धर्म की नई व्याख्या करके उन्होंने भारतीय मुसलमानों और ईसाइयों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने अँगरेजों की कृपा तथा सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया ताकि उनके सहयोग से मुसलमानों की स्थिति में सुखद परिवर्तन आ जाए और वे हिंदुओं की बराबरी में आ जाएँ। इसलिए उन्होंने धर्म का सहारा लेकर अँगरेजों को यह विश्वास दिया कि मुसलमान उनके शासन के खिलाफ कभी भी जिहाद नहीं करेंगे।

सर सैयद अहमद अँगरेजी सरकार के प्रति भक्ति-भाव को धार्मिक कर्तव्य समझते थे। 1884 ई० में उन्होंने जालंधर में भाषण देते हुए कहा कि "मैंने सरकार की कोई सेवा नहीं की बल्कि जो कुछ मैंने किया है वह अपने पवित्र धर्म और सच्चे हादी (धार्मिक मार्ग-दर्शक) की आज्ञाओं का पालन किया है। हमारे सच्चे हादी ने आदेश दिया है कि तुम जिस सरकार के अधीन हो उसकी आज्ञा का पालन करो··· जो कुछ सरकार की सेवा मुझसे हुई है वह वास्तव में मेरे धर्म की सेवा थी।"[1] एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था—"हमें देखना चाहिए कि ईश्वर की इच्छा क्या है ····इस समय में हमें ईश्वर की मर्जी यह प्रतीत होती है कि अँगरेजी नेशन भारत में राज्य करे और हम उनके अधीन रहें और जो कुछ लाभ संभव हो उनसे प्राप्त करें।"[2] मेरठ की एक सभा का संबोधन करते हुए उन्होंने कहा—"इन प्रांतों के हिंदू हमारा साथ छोड़कर बंगालियों के साथ मिल गए हैं। तब हमें उस कौम के साथ मिल जाना चाहिए जिसके साथ हम मिल सकते हैं····कोई मुसलमान इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि ईश्वर ने कहा है कि ईसाइयों के अतिरिक्त किसी धर्म के अनुयायी मुसलमानों के मित्र नहीं हो सकते। जिसने कुरान पढ़ा है और जो इसपर यकीन रखता है वह जान सकता है कि हमारी कौम किसी अन्य कौम से मित्रता और हमदर्दी की आशा नहीं कर सकती····हमें ईश्वर की आज्ञाओं के अनुसार ईसाइयों के प्रति निष्ठावान और मित्रतापूर्ण बने रहना चाहिए।"[3] इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सैयद अहमद धर्म का सहारा लेकर सरकार का सहयोग प्राप्त करना चाहते थे ताकि मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिए अँगरेज कवच बन जाएँ। सर सैयद अहमद भारतीय राजनीति के प्रथम नेता थे जिन्होंने राजनीति का आधार धर्म के आदेशों को बनाया।

यह सब कुछ होते हुए भी सैयद अहमद धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास करते थे।

---

1. मौलवी सैयद इकबाल अली (सं); सफरनामा-ए-पंजाब, पृ० 46
2. वही, पृ० 112
3. सर सैयद अहमद खाँ; प्रेजेंट स्टेट ऑफ पॉलिटिक्स, पृ० 48-50/सफरनामा, पृ० 112, 262

उनका कहना था कि सभी धर्मों के अंदर एकता का भाव छिपा है जिसे व्यावहारिक नैतिकता कहा जा सकता है। इस धारणा के आधार पर कि किसी व्यक्ति का धर्म उसका निजी मामला है, उन्होंने व्यक्तिगत संबंधों में धर्मांधता के लक्षणों की स्पष्ट रूप से निंदा की।

सैयद अहमद ने समाज-सुधार के भी काम किए। उनके सामाजिक विचार भी धार्मिक विचार की तरह स्वतंत्र थे। मुसलमानों का समाज हिंदुओं के समाज की तरह कई कुरीतियों का शिकार हो गया था। समाज में दास-प्रथा प्रचलित थी। बहु-विवाह की प्रथा भी घर कर गई थी। जिहाद, सूदखोरी और युद्ध-बंदियों से संबंधित समस्याएँ भी थीं। इनके निवारणार्थ कदम उठाना था।

इन कुरीतियों से बचने के लिए सैयद अहमद ने मुसलमानों को कहा कि वे इस्लाम के नियमों तथा उपदेशों का अनुशीलन करें। उन्होंने बतलाया कि इस्लाम दासों के प्रति कठोर व्यवहार करने की आज्ञा नहीं देता है बल्कि इसने उनके लिए उदार नियम बनाया है जो दासों के जीवन और चरित्र में परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं। उन्होंने सामान्य परिस्थिति में बहु-विवाह का बहिष्कार किया, किंतु विशेष परिस्थिति में पुरुषों के लिए बहु-विवाह को स्वीकार किया। उन्होंने जिहाद का समर्थन नहीं किया, किंतु यह कहा कि अगर कोई गैर-मुसलमान शक्ति इस्लाम अथवा मुस्लिम संप्रदाय पर आक्रमण करती है तब मुसलमान जिहाद कर सकते हैं। उन्होंने सूदखोरी के रिवाज की भी निंदा की, किंतु वह सारे सूद के प्रकार को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने युद्ध-बंदियों के प्रति भी उदारता दिखलाने के लिए सत्परामर्श दिया और यह कहा कि "युद्ध में पकड़े गए बंदियों को मारना और स्त्रियों को गुलाम बनाना जरूरी नहीं है।" उन्होंने खिलाफत को स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था कि पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के तीन दशक बाद इमाम हसन के साथ ही खिलाफत समाप्त हो गई। ऐसा कहकर उन्होंने अँगरेज शासकों के प्रति सारे मुसलमानों को निष्ठावान बने रहने को कहा। यद्यपि कुछ कट्टर मुसलमानों ने सैयद अहमद के धार्मिक तथा सामाजिक विचारों का विरोध किया और उन्हें 'काफिर' तक कहा एवं उनके विरुद्ध कई फतवें निकाले, किंतु सैयद अहमद साहसपूर्वक अपने विचार पर अडिग रहे जिसके चलते अंत में परंपरावादी मुसलमान शांत हो गए। सैयद अहमद के विचारों को मुसलमानों ने, विशेषकर पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त मुसलमानों ने स्वीकार किया। अलीगढ़ आंदोलन का क्षेत्र व्यापक होने लगा।

सैयद अहमद के समाज-सुधार में एक और बात थी—हिंदू-मुस्लिम एकता। अपने कई व्याख्यानों तथा निबंधों में उन्होंने इस राष्ट्रीय एकता पर बल दिया। 1875 में अलीगढ़ स्कूल की नींव स्थापना के समय उन्होंने कहा कि "आशा है कि मुसलमान और हिंदुओं में जो आपस में वतनी भाई हैं दिन-प्रतिदिन मेल बढ़ता जाएगा।"[1] ऐसे ही उद्‌गार उन्होंने 27 जनवरी, 1883 को अपने पटना व्याख्यान में व्यक्त किया था—

"हम दोनों भारत की हवा में साँस लेते हैं, एक ही गंगा-यमुना का पवित्र पानी

---

1. अलीगढ़ इन्स्टीच्यूट गजट, विशिष्ट अंक, 28 जुलाई, 1875, पृ० 7

पीते हैं, हम भारत की जमीन की उपज से अपनी भूख मिटाते हैं। हम एक साथ जीते और मरते हैं। भारत में रहने के कारण हम दोनों ने अपना रक्त, अपने शरीर का रंग बदल दिया और हम एक से हो गए और हमारे चेहरे-मोहरे भी एक से हो गए। मुसलमानों ने बहुत-से हिंदू तौर-तरीके अपनाए और हिंदुओं ने भी बहुत-से मुस्लिम आचार ग्रहण किए। हम इतने मिल-जुल गए कि हमने नई भाषा उर्दू विकसित की, जो न तो हमारी भाषा थी और न हिंदुओं की भाषा। इसलिए, यदि हम अपने जीवन के उस हिस्से को छोड़ दें जो ईश्वर का है यानी धर्म को, तो निस्संदेह इस तथ्य को मानना पड़ेगा कि हमारा देश एक है, कौम एक है और देश की तरक्की और भलाई तथा हमारी एकता परस्पर सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है। अनबन, झगड़े-टंटे और फूट हमें समाप्त कर देगें।"[1]

उनके ये शब्द भी श्रवणीय हैं—

"भारत में दो कौमें हैं हिन्दू और मुसलमान। यदि एक कौम इनमें से उन्नति करे और दूसरी कौम अवनति में पड़ी रहे तो इसका (भारत) सुन्दर मुखड़ा काना हो जाएगा। इस दुल्हन के सुन्दर चेहरे की खूबसूरती इसी में है कि इनकी दोनों आँखें पूरी तरह स्वस्थ हों।"[2]

1882 में उन्होंने कहा कि भारत की उन्नति इन दोनों कौमों की उन्नति पर निर्भर करती है। भारत एक गाड़ी और इसकी दो कौमें इसके दो घोड़ों के समान हैं। यह गाड़ी किसी भाँति अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाती यदि दोनों में से कोई एक घोड़ा सुस्त और पीछे हटनेवाला हो। भारत की तुलना एक सिपाही से भी की गई और दोनों कौमों की दोनों पैरों से तुलना की गई। लेकिन, शीघ्र ही इस उपमा को छोड़ दिया गया क्योंकि एक कौम दायाँ और दूसरी बायाँ पैर होती और स्वाभाविक रूप से एक शक्तिशाली और दूसरा दुर्बल होता। इसीलिए, सैयद अहमद खाँ पुनः इस उदाहरण पर आ गए जिसके अनुसार भारत को एक खूबसूरत दुल्हन और उसकी दोनों कौमों को दो खूबसूरत आँखें बतलाया गया।[3]

लाहौर में आर्य-समाज के सदस्यों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने शिकायत भरे शब्दों में कहा कि 'मैं हिंदू क्यों नहीं माना जाता?' उनके शब्द थे— "मेरे विचार में हिंदू किसी धर्म का नाम नहीं है बल्कि हर एक व्यक्ति जो हिंदुस्तान का रहने वाला है, अपने-आपको हिंदू कहता है, इसलिए मुझे खेद है कि आप मुझे यद्यपि मैं हिंदुस्तान का रहनेवाला हूँ हिंदू नहीं समझते।"[4] उन्होंने आगे कहा कि भारत की उन्नति के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हिंदू और इस्लाम धर्म के माननेवाले आपस में मिलकर कार्य करें . . . . निस्संदेह धर्म के भेद पर ध्यान न देकर हम यह चाहते हैं कि हिंदू और मुसलमानों में दोस्ती, मुहब्बत, एकता और हमदर्दी उसी प्रकार से हो, जैसे राजनीतिक मतभेद भूलकर हम यह चाहते हैं कि हमारे

---

1. वही/एम० एस० जैन, उद्धृत, पृ० 43
2. वही/वही
3. गजट, 21 मार्च, 1882, पृ० 324/एम० एस० जैन, पृ० 46
4. सफरनामा. पृ० 139-40/एम० एस० जैन, पृ० 46

सामाजिक बर्ताव में मित्रता, मुहब्बत, हमदर्दी और भाईचारा रहे।"[1]

यद्यपि सैयद अहमद राष्ट्रवादी थे, किंतु, उनके हिंदू-मुस्लिम एकता-संबंधी विचार स्वार्थ से ऊपर नहीं थे। उन्होंने इन दोनों संप्रदायों की एकता का समर्थन किया, किंतु, इसके पीछे उनके अपने संप्रदाय के निजी स्वार्थ के विचार थे। वे भारतीय दुल्हन को स्वस्थ तथा सुन्दर रखने के लिए मुसलमानों के विकास में हिंदुओं के सहयोग की अपेक्षा करते थे। अलीगढ़ कॉलेज के लिए मुसलमानों से कम धन मिलने के कारण वे हिंदुओं को प्रगतिशील कहकर उनपर यह उत्तरदायित्व डालना चाहते थे कि वे मुसलमानों की सहायता करें और उन्होंने ऐसे विभिन्न वाक्यों का प्रयोग किया जिनका अर्थ यह लगाया जाता है कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास करते थे और इसी काल में उनके ऐसे वाक्य भी मिलते हैं जिनका स्पष्ट अर्थ मुस्लिम पृथकतावाद होता था।[2] 1876 में भारत को विभिन्न धर्मों और कौमों का समूह बताया गया था। "इसमें रहनेवालों के धार्मिक मतभेद इतने शक्तिशाली थे कि उनके सामने किसी अन्य शक्ति को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता था। ... जिस प्रकार रात और दिन तथा काली और सफेदी का आपस में मिल जाना कठिन था उससे यह अधिक कठिन था कि भारत के धर्म आपस में संगठित हो जाएँ।"[3] सच तो यह है कि "मुसलमान कौम से धन कम उपलब्ध होने के कारण सर सैयद के समक्ष मुख्य समस्या मुसलमानों की प्रगति में हिंदुओं से सहयोग लेना था, हिन्दुओं की प्रगति या आंदोलन में सहयोग देना मुसलमानों का, सैयद अहमद के अनुसार कोई कर्तव्य नहीं था।"

किंतु, तथ्य यह है कि सैयद अहमद समय को लेकर परेशान थे। इस समय मुसलमानों की गिरी अवस्था से वे व्यग्र थे और चाहते थे कि हिंदुओं की तरह मुसलमानों को प्रगतिशील बना दिया जाए और यह तभी संभव था जब देश के बहुसंख्यक हिन्दु मदद करें। मुसलमानों की गिरती अवस्था के कारण सैयद अहमद उनका विशेष पक्ष लेते थे और कभी-कभी उनका स्वार्थ प्रकट हो जाता था। इसी स्वार्थ के कारण और ऊपर से सरकार की नीति के बहकावे में आकर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का विरोध भी किया था। सच तो यह है कि वह भारत में मुस्लिम समाज के जागरण के अग्रदूत थे तथा चाहे कोई भी उनका उद्देश्य रहा हो, उन्होंने मुस्लिम समाज की प्रगति तथा विकास के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया।

सर सैयद अहमद महान शिक्षाशास्त्री थे। पुरानी शिक्षा-पद्धति के आधार पर शिक्षा ग्रहण करने पर भी उन्होंने नई शिक्षा के प्रति अपनी आस्था प्रकट की। वे नई शिक्षा के द्वारा मुसलमानों को व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर बदल देना चाहते थे। अपने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों का प्रसार कर अलीगढ़ आंदोलन को सशक्त बनाने के लिए उन्होंने न केवल मुस्लिम शिक्षा के लिए योजना बनाई, अपितु पुस्तक-निर्माण तथा पत्रिका-प्रकाशन के द्वारा भी उन्होंने जागरण के काम

---

1. सफरनामा, पृ० 140/ताराचंद, उद्धृत, पृ० 317
2. एम० एस० जैन, पृ० 43
3. गजट, 30 जून, 1876, पृ० 397/एम० एस० जैन, पृ० 43-44

किए। उनकी मुख्य पुस्तकों के नाम ये हैं—आसार उस सनादीद (1847), असबाब बगावत-ए-हिंद (1858), लायल मोहम्मडन्स ऑफ इंडिया (1860-67 के बीच), तबयन-उल-कलाम (1864) और ताआम अहल-ए-किताब (1865)। मैनपुरी में मुंसिफी का काम करते हुए आपने कुछ धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। इंगलैंड से वापस आने पर 1870 ई० में उन्होंने 'तहजीब-उल अखलाक' नामक पत्रिका का प्रकाशन करना प्रारंभ किया। इसके द्वारा उन्होंने मुसलमानों की परंपरागत मान्यताओं पर कुठाराघात किया। इन पुस्तकों और पत्रिकाओं ने निश्चित रूप से मुस्लिम जगत में शैक्षिक जागरण लाने का काम किया और मुसलमानों में खलबली मच गई।

सर सैयद भारत में प्रचलित मुसलमानी शिक्षा के विरुद्ध थे। वह मदरसों में दी जानेवाली पुरानी शिक्षा, इस शिक्षा के पाठ्यक्रम और यहाँ तक कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा के भी आलोचक थे। धर्म-निरपेक्ष शिक्षा से, उनके अनुसार, छात्रों का विश्वास कमजोर हो जाता है जिसमें नैतिक सिद्धांत का अभाव हो जाता है। मदरसों में दी जानेवाली शिक्षा की पुरानी पद्धति को वे कतई पसंद नहीं करते थे और इसीलिए जौनपुर, सहारनपुर, अलीगढ़, देवबंद, दिल्ली, कानपुर, लाहौर, लखनऊ, आगरा आदि के मदरसों में दी जानेवाली शिक्षा को वे बेकार मानते थे। मदरसों में पढ़ायी जानेवाली गणित, ज्योतिष, तर्कशास्त्र से संबद्ध शिक्षा भी उन्हें पसंद नहीं थी। उनकी अवधारणा थी कि "अब मुस्लिम विज्ञान की व्यर्थता बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी है और यह बात अच्छी तरह साफ हो चुकी है कि उनमें कोई उपयोगी ज्ञान नहीं है और यही कारण है कि मुसलमानों का पतन हुआ।"[1] विश्व-विद्यालयों की उच्च शिक्षा भी उन्हें पसंद नहीं थी। वह विद्यालय को नाममात्र का ज्ञान और महज डिग्रियाँ देनेवाली संस्था मानते थे।

सैयद अहमद की शिक्षा-संबंधी अवधारण के खास उद्देश्य थे। वे शिक्षा में धार्मिक तत्त्ववाले विषय को सम्मिलित करने के पक्ष में थे ताकि मुसलमानों का धार्मिक विश्वास सुदृढ़ हो और वे परंपरागत रीति-रिवाजों को तर्क के आधार पर अधिग्रहण या त्याग करने का विवेक सीख सकें। वे आवासीय महाविद्यालयों की स्थापना के समर्थक थे। उनका विचार था कि ऐसे महाविद्यालय छात्रों को केवल सैद्धांतिक शिक्षा ही नहीं देते बल्कि उनके चरित्र-गठन के लिए नैतिक शिक्षा भी देते हैं। इसीलिए उन्होंने नई शिक्षा को स्वीकार किया और चाहा कि आधुनिक विज्ञान की उच्चतम शिक्षा मुसलमान छात्रों को दी जाए ताकि उनमें तर्क तथा विवेक का बीज अंकुरित हो और उनमें आधुनिकता आवे। अपने इन शैक्षिक उद्देश्यों को साकार रूप देने के लिए सैयद अहमद ने काम करना प्रारंभ किया।

सैयद अहमद ने एक पदाधिकारी के रूप में अनेक नगरों में स्कूलों की स्थापना की। 1861 में मुरादाबाद में और 1864 में गाजीपुर में स्कूल खोले गए तथा अनेक पाश्चात्य पुस्तकों का उर्दू भाषा में अनुवाद करवाया गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने मोहम्मडन एडूकेशनल कान्फ्रेंस, इंडियन पैट्रियोटिक एसोसिएशन, मोहम्मडन एंग्लो आरियंटल डिफेंस और वैज्ञानिक समितियों की स्थापना की।

---

1. ताराचंद, पृ० 318

सैयद अहमद की मुस्लिम शिक्षा-योजना के अंतर्गत तीन प्रकार की संस्थाएँ थीं—

(क) उच्च विद्यालय—इस योजना के अंतर्गत मुस्लिम-एंग्लो ओरियंटल कॉलेजों का संस्थापन करना था जिनमें अठारह वर्ष की उम्र से ऊपरवाले छात्रों का दाखिला होना था और जिन्हें अँगरेजी, उर्दू, अरबी और फारसी विषयों का अध्ययन करना था।

(ख) माध्यमिक विद्यालय—ग्यारह से अठारह वर्ष के बच्चों के लिए माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना करने की योजना थी। इनमें पठन-पाठन का माध्यम उर्दू होना था।

(ग) प्राथमिक विद्यालय (मकतब)—इनमें छः से ग्यारह साल के बच्चों को शिक्षाध्ययन करना था।

इन तीनों प्रकार की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देना अनिवार्य था। इस योजना के अनुसार सैयद अहमद ने काम करना प्रारंभ किया।

1874 में अलीगढ़ मोहम्मडन एंग्लो ओरियंटल स्कूल की स्थापना की गई। इसका उद्घाटन 1875 ई० में सर विलियम म्यूर ने किया। यह स्कूल 1878 ई० में एक कॉलेज के रूप में परिणत हो गया जिसका उद्घाटन 8 जनवरी, 1877 ई० को गवर्नर-जनरल लॉर्ड लिटन ने किया। यही 1920 ई० में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ। सैयद अहमद खाँ के शैक्षिक कार्य में दो नवाब मुहसिन-उल-जुल्क तथा वकरूल मुल्क, युग के विद्वान डा० नाजीर अहमद और शायर अल्ताफ हुसैन हाली ने सहयोग किया। इन्हीं के सहयोग से आगे चलकर सैयद अहमद खाँ ने मोहम्मडन एडूकेशनल कान्फ्रेंस की स्थापना की।

कॉलेज की स्थापना से यह बात स्पष्ट हो गई कि भारतीय मुसलमान पाश्चात्य शिक्षा का अध्ययन कर उससे लाभान्वित होंगे। यह भी आशा की गई कि इस कॉलेज से निकले छात्र न केवल मुस्लिम समाज में सुधार लाएँगे बल्कि साम्राज्य की सुरक्षा में भी सहायक बनेंगे।[1] अलीगढ़ कॉलेज की शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य ही था कि मुसलमान छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जाए कि वे अँगरेजों के प्रशासन की उपलब्धियों को अच्छी तरह समझ सकें तथा उसके प्रति आभारी बन सकें। अलीगढ़ कॉलेज के क्रेस्ट पर नया 'चाँद' और 'ताज' अंकित था जो मुसलमानों और अँगरेजों के मैत्री-संबंध का द्योतक था।[2] मुस्लिम समाज के नेताओं एवं अँगरेज प्रोफेसरों ने इस बात पर काफी बल दिया था कि अलीगढ़ कॉलेज की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अँगरेजी सरकार एवं ताज के प्रति भक्ति तथा निष्ठा की भावना जागृत करना था।[3] सैयद अहमद चाहते थे कि मुसलमानों तथा अँगरेजों में मित्रता इतनी गहरी हो जाए कि वे दो शरीरों में एक आत्मा की भाँति मिलकर कार्य करें।

---

1. गजट, 15 अगस्त, 1893, पृ० 811
2. रिपोर्ट, मोहम्मडन एडूकेशनल कान्फ्रेंस, 1894, पृ० 170
3. अलीगढ़ कॉलेज मैगजीन, जुलाई 1894, पृ० 1

यद्यपि, सर सैयद शिक्षा की प्रगति का सारा भार और उत्तरदायित्व सरकार पर डालना नहीं चाहते थे और वे यहाँ तक मानते थे कि "यदि सरकार उच्च शिक्षा के लिए स्थापित कॉलेजों को समाप्त भी कर दे तब भी कोई मुश्किल नहीं होगी", तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि अलीगढ़ कॉलेज तत्काल सरकार की कृपा का आकांक्षी था। यह कॉलेज "एक तरफ मुस्लिम समाज की शुभेच्छा तथा सहयोग पर निर्भर" था तो दूसरी तरफ "सरकार की अनुकूलता और सहारे पर भी निर्भर था।" यद्यपि यह कॉलेज सैयद अहमद के जीवन की एक महान उपलब्धि है, तथापि वह उच्चाकांक्षा की सीमा तक नहीं पहुँच सके। उन्हें आशा थी कि कॉलेज उनकी बिरादरी में जागरण लाएगा, किंतु ऐसा नहीं हो सका। फिर भी यह कॉलेज अलीगढ़ आंदोलन का केंद्र हो गया जो मुसलमानों के जीवन में परिवर्तन लाने लगा। डा० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है कि "ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी एक संस्था ने किसी जाति के लिए इतना अधिक नहीं किया है, जितना इस कॉलेज ने मुसलमानों के बीच उच्चतर शिक्षा और आधुनिक संस्कृति की प्रोन्नति के लिए किया है।"[1]

यहाँ अगर सैयद अहमद खाँ के राजनीतिक विचारों और कार्यों का उल्लेख किया जाए तो यह अप्रासंगिक नहीं होगा। उनके राजनीतिक कार्यों ने मुसलमान समाज में चेतना लाने का प्रयास किया। सैयद अहमद अँगरेजों की कृपा एवं सहयोग प्राप्त कर मुसलमानों को सरकारी पदों पर देखना चाहते थे। वे उनको उनकी राष्ट्रीयता से परिचित कराना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने तथा उनके समर्थकों ने अप्रैल, 1883 ई० में मोहम्मडन पॉलिटिकल एसोसिएशन की स्थापना की। इसी वर्ष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इंडियन नेशनल कांफ्रेंस की स्थापना की थी। इस संगठन के उद्देश्य इस प्रकार थे—

1. अँगरेजी राज्य के कल्याण तथा मुस्लिम समाज की भौतिक प्रगति तथा विकास के लिए प्रयास करना तथा तत्संबंधी कार्य के लिए साधनों को इकट्ठा करना।

2. व्यवस्थापिका सभा में प्रस्तुत विधि प्रस्तावों पर विचार करना और जरूरत पड़ने पर नए प्रस्तावों को सरकार के समक्ष रखना।

3. सरकार के समक्ष नम्रतापूर्वक मुसलमान समाज की आवश्यकताओं और अधिकारों को प्रस्तुत करना।

4. देश की प्रगति में बाधा न पहुँचानेवाले कार्यों के संबंध में सूचना देना।[2]

सैयद अहमद इस एसोसियेशन के कोषाध्यक्ष थे। उन्होंने इसकी स्थापना को 'एक ऐसी औषधि के समान बताया जिसे स्वस्थ व्यक्ति इस उद्देश्य से अपने पास रखते थे कि आवश्यकता पड़ने पर वह काम आवे।' इस पॉलिटिकल एसोसिएशन का प्रभाव मुस्लिम समाज के सामंतों और रईसों पर अधिक पड़ा जो सामान्य मुस्लिम समुदाय को प्रभावित करने की क्षमता रखते थे।

---

1. भारत का वृहत इतिहास, भाग-3, पृ० 317
2. गजट, 7 अप्रैल 1883, पृ० 388

जब 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ तब सैयद अहमद ने भी मुसलमानों के लिए एक ऐसा ही संगठन बनाने का विचार किया। उन्होंने 1887 ई० में 'इंडिया पेट्रियोटिक एसोसिएशन' की स्थापना शिक्षा सम्मेलन कान्फ्रेंस के रंगमंच से की। इस संगठन का मुख्य लक्ष्य 'मुस्लिम जनमत का गठन करना और सामंतीय तथा रूढ़िवादी तत्त्वों का राष्ट्रीय आंदोलन के विरूद्ध समर्थन प्राप्त करना' था। इस एसोसिएशन के नाम में बाद में 'यूनाइटेड' शब्द जोड़ दिया गया। इसके मुख्य उद्देश्य ये थे—

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समर्थकों द्वारा किए गए उन सारे प्रस्तावों का खंडन करना जो ब्रिटेन की जनता को यह विश्वास दिलाते थे कि कांग्रेस देश के समस्त वर्गों की सभा है।

2. भारतीय काँग्रेस तथा कांग्रेस विरोधी हिंदुओं के विचारों से ब्रिटेन की पार्लियामेंट को अवगत कराना और भारत में अँगरेजी साम्राज्य को सुदृढ़ करने में सहयोग करना तथा यह भी प्रयास करना कि भारत में शांति तथा व्यवस्था सुरक्षित रहे।

3. अँगरेजों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने का सतत प्रयास करना।[1]

दिसंबर 1893 ई० में आंदोलन के केन्द्र अलीगढ़ में मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल डिफेंस एसोसिएशन की स्थापना की गई जो सैयद अहमद के राजनीतिक चिंतन के परिणाम थे। इसकी स्थापना के दो मुख्य कारण थे—सरकार से मुसलमान के विशिष्ट हितों की रक्षा के लिए कुछ माँग करना और मुस्लिम युवा वर्ग में उत्तेजना भरना ताकि वे राष्ट्र में चल रहे आंदोलन से पृथक रहकर केवल अपनी बिरादरी के हित में सोचें। जैन महोदय लिखते हैं कि डिफेंस एसोसिएशन का लक्ष्य भारत में मुसलमानों को एक पृथक राजनीतिक शक्ति बना देना था। इसके निम्नलिखित उद्देश्य थे—

1. ब्रिटेन की जनता तथा भारत स्थित अँगरेज सरकार के समक्ष मुसलमानों के राजनीतिक हितों और उनकी उन्नति के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

2. मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक रखना।

3. ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा तथा स्थायित्व के लिए योजनाओं का समर्थन करना।

सर सैयद अहमद ने 1865 ई० में ही उर्दू भाषा में नए विचारों के लिए एक 'साइन्टिफिक सोसाइटी' की स्थापना की थी जिसके माध्यम से उर्दू में अँगरेजी पुस्तकों का अनुवाद किया जाता रहा।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सर सैयद अहमद तथा उनके अनुयायी मुसलमानों के भूतकालीन ऐतिहासिक योगदान की याद दिलाकर मुसलमानों में जागरण लाना चाहते थे। वे हिंदुओं के विरोधी नहीं थे, बल्कि उनकी प्रगतिशीलता

---

1. पेट्रियोटिक पम्फलेट, संख्या 2, परिशिष्ट/एम० एस० जैन, पृ० 32

का बखान करते थे। उनका तो सिर्फ यह ध्येय था कि मुसलमान भी हिंदुओं और अँगरेजों के सहयोग से प्रगतिशील बन जाए।

मूल्यांकन—कई विचारकों ने अलीगढ़ आंदोलन की आलोचना की है। उनकी अवधारणा है कि भारतीय राष्ट्रवाद और स्वस्थ राजनीति के विकास में यह आंदोलन बाधक बना। इसने मुसलमानों को साम्प्रदायिक बना डाला और उन्हें हिंदुओं तथा कांग्रेस से पृथक रहने का मनोविज्ञान दिया।

पृथकता की भावना कई कारणों से उत्पन्न हुई। प्रथम, सर सैयद और उनका आंदोलन, दोनों प्रारंभ से ही अँगरेजों की कृपा और सहानुभूति पर निर्भर रहे और उनकी सहानुभूति तथा सहयोग पाने के लिए आवश्यक था कि राजनीति में प्रगतिशील हिंदुओं के विरुद्ध मुसलमान अँगरेजों की कूटनीति का समर्थन करे। मिस्टर बेक सैयद अहमद की पीठ पर हमेशा हावी रहा। वह 1883 ई० से 1899 ई० तक अलीगढ़ मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल कॉलेज का प्रिंसिपल था। इस संपूर्ण लंबी अवधि तक वह अदम्य उत्साह एवं उद्योग से काम करता रहा ताकि वह राष्ट्रीय आंदोलन से सैयद अहमद का साथ छुड़ा दे तथा मुसलमानों को हिंदुओं से अलग रहने और अपने को ब्रिटिश सरकार के संरक्षणकारी पक्षों के अधीन रखने को प्रवृत्त करे। बेक अपने प्रयत्न में बहुत सफल रहा। अतः, अँगरेजों पर निर्भर रहने के कारण हिंदू-मुस्लिम पृथकतावादी नीति को भोजन मिलना ही था। द्वितीय, सर सैयद अहमद हिंदू धर्म और समाज-सुधारकों के विपरीत पश्चिमी सभ्यता से आवश्यकता से अधिक प्रभावित हो गए थे और यही कारण था कि वे अँगरेजों का समर्थन करने लगे थे। वे यह भूल गए थे कि भारत उनकी जन्मभूमि है और वे मुसलमानों के ही नहीं, हिंदुओं और अन्य वर्गों के भी नेता हैं। तृतीय, मुसलमान अल्पसंख्यक थे और सैयद अहमद को हमेशा यह भय बना रहता था कि बहुसंख्यक हिंदू मुसलमानों का अहित कर सकते थे। इसी कारण पृथकत्व ने जन्म लिया और चिंतकों को सैयद अहमद के विचारों में संकीर्णता की झलक मिली। वे उनके विचारों को हिंदूविरोधी मानने लगे। वास्तविकता यह थी कि सर सैयद अहमद चाहते कि हिंदुओं की तरह मुसलमान भी प्रगति करें और भारत के समाज में प्रतिष्ठित स्थान बना लें।

डा० विपनचन्द्र ने उनकी एक अन्य गलत धारणा का उल्लेख किया। वे लिखते हैं कि सैयद अहमद खाँ की धारणा थी कि मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में केवल आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को ग्रहण कर ही सुधार लाया जा सकता है। यही कारण था कि आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देना जीवन भर उनका सर्वप्रथम काम रहा और वे सुधार के अन्य पहलुओं को नजर-अंदाज करते रहे।[1]

डा० ताराचंद ने उनकी एक भूल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सैयद अहमद ने एक भूल यह की कि उन्होंने मुस्लिम समाज को देश से ऊपर रखा। उन्हें देश की महानता पर गर्व करना चाहिए था। इसके अतिरिक्त उन्होंने उच्च वर्ग के मुसलमानों को आशा और भरोसा दिया और सामान्य मुसलमानों पर ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि अलीगढ़ नवजीवन-प्राप्त इस्लाम का केंद्र नहीं बन पाया

---

1. विपनचंद्र, आधुनिक भारत, पृ० 179

और इसके विपरीत भारत में इन दोनों संप्रदायों के बीच अलगाव की भावना पैदा हो गई।

डा० एम० एस० जैन ने लिखा है कि अलीगढ़ कॉलेज ने सैयद अहमद के उद्देश्यों को भी पूरा नहीं किया। इस संस्था से निकले छात्र अपनी संस्कृति की रक्षा नहीं कर सके और पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में अंधे हो गए। इसके अतिरिक्त सैयद अहमद के काल तक तो निश्चित रूप से यह संस्था कारगर सिद्ध न हो सकी। डा० रामगोपाल ने लिखा है कि अलीगढ़ कॉलेज में पढ़ने के लिए मुसलमानों में कोई विशेष चाह अथवा उत्सुकता भी नहीं थी। भारत में 1898 ई० से 1902 ई० तक बी० ए० पास करनेवाले मुसलमान छात्रों की संख्या 1,184 थी। इनमें से अलीगढ़ विश्व-विद्यालय से 220, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 410, कलकत्ता विश्वविद्यालय से 398 और पंजाब विश्वविद्यालय से 225 मुस्लिम स्नातक उत्तीर्ण हुए थे। पहली बार 1890-91 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में एक मुसलमान छात्र एम० ए० में था, 1891-92 में दो रहे और अगले दो वर्षों में एक भी नहीं रहा, फिर 1894-95 में दो रहे। 1901-02 में फिर एक ही मुसलमान छात्र था और 1902-03 में एक भी नहीं। 1882 से 1887 तक मुसलमानों को सरकारी नौकरियाँ दिलाने के लिए जोरों का अभियान चला था। परंतु, इस काल में अलीगढ़ कॉलेज से केवल 10 स्नातक निकले थे।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि सर सैयद के जीवन-काल में शिक्षा की दृष्टि से अलीगढ़ कॉलेज का योगदान नगण्य ही रहा। साथ ही इस धारणा में भी कुछ दम नहीं कि अलीगढ़ आंदोलन के कारण ही मुसलमान उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके।

सर सैयद अहमद परिस्थिति की उपज थे। जिस काल में वे पैदा हुए थे उस काल में मुसलमानों की स्थिति ठीक नहीं थी। अतः, उनके लिए विशेष रूप से सोचना सैयद अहमद के लिए लाजिमी था। आधुनिक भारत के इतिहास में वे एक महान नेता के रूप में याद किए जाते हैं। सी० एफ० एंड्रूज ने एक व्यक्ति की गई सैयद के प्रति श्रद्धांजलि के अंश को आधार बनाकर लिखा है कि "सर सैयद अहमद खाँ में बड़प्पन, सिंह-सदृश्य शक्ति, उच्चादर्श तथा एक ऊँचे दिमाग का प्रबल जोश था। जितने भी मुसलमानों से मैं मिला, उनमें से किसी ने भी मुझे अपने चरित्र बल अथवा बौद्धिक महानता से इतना प्रभावित नहीं किया जितना सर सैयद अहमद खाँ ने किया। वह जहाँ भी जाते थे स्वाभाविक रूप से नेता मान लिए जाते थे। उनकी उपस्थिति तथा उनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावोत्पादक था। वह मनुष्यों के जन्मजात नेता थे।"[2] डा० ताराचंद ने लिखा है कि "उन्होंने (सैयद अहमद) अपने गौरवमय नेतृत्व से मुस्लिम समाज को निराशा के कीचड़ से उबार लिया। उन्होंने उनके मन को दकियानूसी इल्म से हटाकर आधुनिक शिक्षा की ओर प्रवृत्त किया जिससे वह अपने देश के मामलों में सही भाग लेने में समर्थ हुए। उन्होंने अँगरेज शासकों के संदेह तथा शत्रुता को विश्वास तथा प्रेम में बदल

---

1. थियोडोर मोरिसन; द हिस्ट्री ऑफ द मोहम्मडन ऐंग्लो-ओरियंटल कॉलेज, अलीगढ़, फ्राम इट्स फाउन्डेशन टू द इयर 1903, पृ० 63। रामगोपाल, भारतीय मुसलमानों का राजतीतिक इतिहास, पृ० 53-54

2. ताराचंद, उद्धृत, पृ० 335

दिया।"[1] एस० सी० सरकार के शब्दों में "उनके (सैयद अहमद) कार्यों और अलीगढ़ आंदोलन के द्वारा समूचे भारतीय इस्लाम में एक नए जीवन का संचार हुआ"[2] प्रो० आर्नोल्ड ने उन्हें 'मुसलमानों का सबसे महान नेता' कहा है। वे राष्ट्र-पुरुष थे। अनेक अवसरों पर व्यक्त किए उनके उद्‌गार उन्हें राष्ट्र-पुरुष सिद्ध करते हैं। आर० सी० मजुमदार ने लिखा है कि सर सैयद अहमद उत्साही देशभक्त और राष्ट्रीयतावादी थे।[3] सैयद अहमद ने एक बार कहा था कि "कोई राष्ट्र तब तक आदर तथा सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक वह शासन करनेवाली नस्ल के साथ समानता नहीं पा लेता तथा अपने देश की सरकार में हाथ नहीं बँटाता।"[4]

सर सैयद अहमद पर सांप्रदायिक होने का दोषारोपण किया जाता है। किंतु, विद्वानों ने इसे गलत ठहराया है। विपनचंद्र लिखते हैं कि अलीगढ़ कॉलेज के दरवाजे सभी भारतीयों के लिए (न कि सिर्फ मुसलमानों के लिए) खुले हुए थे। उदाहरण के लिए 1898 में कॉलेज में 64 हिन्दू और 285 मुसलमान छात्र थे। सात भारतीय शिक्षकों में से दो हिन्दू थे जिनमें से एक संस्कृत का प्रोफेसर था। मगर "अपने जीवन के अंतिम वर्षों के दौरान सैयद अहमद अपने अनुयायियों की उदीयमान राष्ट्रवादी आंदोलन में शामिल होने से रोकने के लिए हिन्दू आधिपत्य की बात करने लगे। यह दुर्भाग्यपूर्ण था क्योंकि वे मूलतः सांप्रदायिक नहीं थे। वे केवल यह चाहते थे कि मुसलमानों के मध्यम और उच्च वर्गों का पिछड़ापन खत्म हो जाए।"[5]

सर सैयद अहमद के आंदोलन का गहरा प्रभाव मुसलमानों पर पड़ा। सैयद अमीर अली, मौलवी चिरागअली, सर शेख मोहम्मद इकबाल, प्रो० एस० खुदाबक्स और प्रो० ए० एम० मौलवी आदि इनके समर्थक थे जिन्होंने आंदोलन को जानदार बनाया। आंदोलन से प्रभावित होकर संप्रदाय की सेवा के लिए बहुत-से अंजुमन कायम किए गए और एक शक्तिशाली मुस्लिम प्रेस का विकास हुआ। सुधार की भावना से मुस्लिम नारियाँ भी काफी दूर तक प्रभावित हुईं। 1914 ई० से अखिल भारतीय मुस्लिम महिलाओं की सभाएँ होने लगीं। भोपाल की बेगम साहिबा ने 1918 में अखिल भारतीय नारी सभा का सभापतित्व किया। उन्होंने अपने राज्य में स्त्रियों के लिए बहुत-से सामाजिक तथा शिक्षा-संबंधी सुधारों को चलाया। कुलीन तथा शिक्षित क्षेत्रों की प्रमुख महिलाओं ने पर्दा करना छोड़ दिया। वे उच्च शिक्षा ग्रहण करने लगीं और राजनीति में भाग लेने लगीं।

अहमदिया आंदोलन

भारतीय मुसलमानों को अहमदिया आंदोलन ने भी प्रभावित किया। गुरुदासपुर जिले (पंजाब) के कादियान नामक एक छोटे नगर में 1879 में मिर्जा गुलाम अहमद

---

1. वही, पृ० 333
2. आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास, पृ० 508
3. ब्रिटिश पारामाउण्टसी, पृ० 317
4. वही
5. विपनचंद्र, पृ० 179

का जन्म हुआ था जो मुगलवंश का रक्त-बीज था। यही अहमद अहमदिया आंदोलन का जनक था। अहमद धर्मशास्त्र का ज्ञाता तो था ही, अरबी और फारसी भाषा का भी उसे ज्ञान था।

गुलाम अहमद ने स्वयं को खुदा द्वारा भेजा हुआ एक विशेष पैगम्बर कहा। उसने मौलवियों की बुराइयों से बचने के लिए मुसलमानों को कहा तथा यह भी एलान किया कि मौलवी असत्य की ओर जा रहे हैं। उसने पीरों तथा कब्रों की इबादत न करने के लिए मुसलमानों से आग्रह किया। उसने पर्दा-प्रथा तथा तलाक का समर्थन किया। इनके शिष्य कादियानी कहे गए। कादियानी आंदोलन लंका तथा बर्मा में भी फैला।

1908 में मिर्जा गुलाम अहमद की मृत्यु हो गई। उसे कादियान में दफना दिया गया। उसके निधनोपरांत अहमदिया आंदोलन की बागडोर एक खलीफा ने अपने हाथों में सँभाली। इसका सदर मुकाम कादियान था। किंतु, प्रथम विश्व-युद्ध के समय इस संप्रदाय में फूट पैदा हो गई। कादियानी दल से पृथक होकर ख्वाजा कमीम उद्दीन तथा मोहम्मद अहमद अली ने लाहौरी दल का गठन किया। कादियानी दल के समर्थकों का कहना था कि सम्प्रदाय के प्रवर्तक को 'नबी' समझना चाहिए जबकि लाहौरी दल के अनुयायियों का कहना था कि वह इस्लाम में महज मुजाहिद अथवा सुधारक था।

पंजाब में अन्य आंदोलन भी प्रारंभ हुए। 1885 में 'अंजुमने हिमायते इस्लाम' का आंदोलन प्रारंभ हुआ और इसके सदस्यों ने मुस्लिम समाज के सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक स्तर को उन्नतशील बनाने का प्रयास किया। 1894 ई० में लखनऊ में 'नदवतुल उलेमा' नामक एक संस्था की स्थापना की गई जिसका मूल उद्देश्य था मुस्लिम समाज में प्रविष्ट कुरीतियों को दूर करना। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने 'खुदाई खिदमतगार आंदोलन' का सूत्रपात किया और भ्रातृत्व भावना का प्रसार किया। इसी प्रकार, इनायतुल्लाह खाँ ने 'खाकसार आंदोलन' को जन्म दिया। इस आंदोलन ने अनुशासन तथा सैनिक शिक्षा पर बल दिया। बीसवीं सदी में मुस्लिम लीग ने सुधार लाने के लिए आंदोलन प्रारंभ किया।

□□□